International Journal of Multidisciplinary Trends

E-ISSN: 2709-9369
P-ISSN: 2709-9350
www.multisubjectjournal.com
IJMT 2024; 6(7): 34-38
Received: 15-05-2024
Accepted: 19-06-2024

डॉ. राजकुमार
एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी–विभाग,
जनता विद्या मन्दिर गणपतराय
रासीवासिया महाविद्यालय,
चरखी दादरी, हरियाणा, भारत

Corresponding Author:
डॉ. राजकुमार
एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी–विभाग,
जनता विद्या मन्दिर गणपतराय
रासीवासिया महाविद्यालय,
चरखी दादरी, हरियाणा, भारत

उषा प्रियम्वदा की कहानियों में नारी स्वतन्त्रता की संकल्पना

राजकुमार

DOI: https://www.doi.org/10.22271/multi.2024.v6.i7a.796

सारांश
नारी चाहे सभी भूमिकाओं में स्वतन्त्र होने की कामना करे, पर, मां रूप में वह भावनात्मक, रागात्मक, आत्मिक रूप से बंधी हुई है। सन्तान द्वारा किया गया ठण्डा व्यवहार उसकी भावनाओं को ठेस पहुंचाता है। बच्चे जब उससे किसी कार्य के लिए नहीं कहते हैं, उसकी रूटीन में बाधा नहीं डालते हैं, मां के बनाए पकवान शिष्टतावश चख भर लेते हैं तो वह मर्माहत होकर रह जाती है। वह जो परम्परागत मां की भांति चाहती है कि बच्चे उससे लाड़–दुलार करें, वह उन्हें लेकर व्यस्त हो जाए, तरह–तरह के व्यंजन बनाए।

कुटशब्दः नारी, सार्थकता, मातृत्व, मानसिकता, अकेलापन

प्रस्तावना
पूर्ण शोध–पत्र
उषा प्रियम्वदा की कहानियों में नारी
क. मां के रूप में

आधुनिक हिन्दी साहित्य में नारी का मातृ–रूप अपने परम्परागत व परिवर्तित दोनों रूपों में चित्रित हुआ है। नारी जीवन की सार्थकता एवं सफलता उसके मातृत्व में निहित है। वास्तव में नारी का मातृ–रूप ही उसका चरमोत्कर्ष है। वात्सल्य भाव में ही उसकी पूर्णता है। अपना सारा सुख, वैभव, उल्लास सन्तोष वह हंसते–हंसते अपनी सन्तान पर उड़ेल देती है, जिसका वह कोई मूल्य नहीं चाहती। त्याग भावना के कारण ही वह अत्यन्ती गौरवमयी हो जाती है। उसके व्यक्तित्व में औदात्य आ जाता है।

प्रायः कहा जाता है कि आधुनिक नारी में मातृत्व की भावना का ह्रास होता जा रहा है, परन्तु वास्तविकता यह नहीं है। मातृ–रूप में नारी आज भी उतनी ही स्नेहमयी, ममतामयी, त्यागपूर्ण व भावुक है, जितनी प्राचीन काल में रही होगी। युग परिवर्तन के साथ उसकी भूमिका में परिवर्तन आ जाता है, जो कि एक स्वाभाविक प्रक्रिया है।

आधुनिक कथा–साहित्य में नारी का मातृ रूप अपने परम्परागत व परिवर्तन दोनों रूपों में चित्रित हुआ है। माता के रूप में नारी अपने बच्चे की रूचि के अनुसार अनायास स्वयं को बदलती जाती है। यही नहीं, नारी को पत्नी रूप में जो स्नेह बांध कर नहीं कर पाता, ममता रूप में वही उसके लौह–श्रंखला सिद्ध होता है। वस्तुतः नारी का उज्ज्वलतम्–रूप उसके मातृत्व में ही प्रकट होता है। ''नारी जो कि मां पहले है, प्रेयसी बाद में''[1] उषा प्रियम्वदा ने यह उक्ति देकर ममता के पहलू को दर्शाया है। भले ही, आज आधुनिकता का वह रूप भी सामने आता है जहां वह सन्तानोत्पादन में ''गन्दगी'' अनुभव करती है।

नारी में मां बनने की स्वाभाविक इच्छा होती है। ''टूटे हुए'', ''पैरम्बु लेटर'', ''स्वीकृति'', ''मान और हठ'', ''फिर वसन्त आया'' इन कहानियों में लेखिका ने नारी में मातृत्व की ललक को दिखाया है कि सन्तान के अभाव में वह किस मानसिक विक्षिप्तता तक पहुंच जाती है, या फिर दूषित मनोवृत्तियों का शिकार रहती है। ''टूटे हुए'' की तन्त्री त्रिपाठी को प्रथम सन्तान की शारीरिक मानसिक अक्षमता असामान्य बना गई है। आगामी सन्तान के भी पूर्ववत् हो जाने के भय से वह अपने पति से सहज शारीरिक–सम्बन्ध स्थापित नहीं कर पाई। उसकी स्थिति मानसिक रूप से विक्षिप्त प्राणी जैसी ही गई है। वह भास्कर से कहती है ... ''भास्कर ... इस अस्पताल में हमारा पुत्र है। वह नार्मल नहीं है। कभी भी नार्मल जीवन नहीं बिता सकेगा।''[2]

''पैरम्बुलेटर'' की कालिन्दी अपने लिए बुन्दे न खरीद अपने आने वाले बच्चे के लिए पैरम्बुलेटर खरीदती है। मृत–कन्या के जन्म के उपरान्त उसकी हृदय को गहरा आघात लगता है। पैरम्बुलैटर उसकी मातृत्व भावना का प्रतीक बन कर रह जाता है। अपनी सास द्वारा पैरम्बुलेटर ननद को देने के लिए कहने पर, वह झगड़ पड़ती है। बच्चे की मृत्यु के उपरान्त वह खिन्न–मन बैठी रहती थी। ''उसकी आंखों में गहरा गाम्भीर्य आ गया था, जिनमें कभी–कभी दर्द के डोरे उभर आते थे।''[3] किसी के घर बच्चे होने का समाचार सुन उसकी आंखें दुःखी हो जाती थी।

वह सोचती थी ... ''अगर वह लड़की जिन्दा रहती, तो कम–से–कम सात बरस की होती।''[4]

पति की नौकरी छूट जाने पर और कहीं से भी सहारा न मिलने पर, परमेश्वरी उस संकट के समय पैरम्बुलेटर बेचने के लिए कहता है – ''किशन बाबू हैं न, उन्हें गाड़ी की जरूरत है, ''कालिन्दी ने एक आर्त चित्कार से कहा – ''नहीं, नहीं मैं गाड़ी नहीं बेचूंगी।''[5] उसकी हाथ एक मात्र आभूषण अपने गले की चेन के कांटे से उलझने लगे। ''इसे ले लो, पर गाड़ी नहीं।''

सन्तान के अभाव में नारी अतृप्त मातृत्व की वेदना सहती है। भले ही, वह पति से परित्यक्त हो, आर्थिक रूप से स्वावलम्बी बन आत्म–निर्भर जीवन बिता रही हो, पर उसके मन में किसी कोने में मातृत्व की इच्छा विद्यमान रहती है। ''मान और हठ'' की अमृता अभिमानवश अपने पति को छोड़ नौकरी कर लेती है। पड़ोस में बच्चों का शोर उसे असह्य लगने लगता है। उसे ख्याल आता है कि उसके पति ने शादी कर ली होगी– ''मुकुल के पत्नी है, बच्चे भी होंगे ही। आठ साल हो गए, पूरे आठ साल।'' (''स्वीकृति'' की जपा को अेली पड़ने पर ध्यान आता है।''[6] – विवाह के बाद उसे छोटे–छोटे कपड़े बुनना स्वाभाविक लगता था। ''फिर वसन्त आया'' की छाया दूसरों के बच्चों को प्यार कर अपनी मातृत्व की इच्छा को शान्त करती है। ''दृष्टिकोण'' की चन्द्रा पति से असन्तुष्ट रहने पर सम्बन्ध–विच्छेद कर लेती है। पति से दूर रहना तो उसे नहीं खटकता परन्तु बंटी का छः साल की आयु में गम्भीर रहना उसके मन को कचोटता रहता है। बंटी द्वारा लिखित हर हफते टेढ़े मेढ़े अक्षरों में, ''डियर'' ममी'' के खत पढ़ कर वह अधिक उद्विग्न हो उठती है। उसे लगता है कि ''साम्ब ने उसका जीवन ही नहीं बिगाड़ा, उससे उसका पुत्र भी छीन लिया है और वह, पति–पुत्र, सबके होते हुए भी, इस समय थके–हारे, घर जाने वाले लोगों की भीड़ में से एक थी।''[7] उसे अपने पूर्व के जीवन पर विक्षोभ होता है – ''अगर मैंने शादी से पहले इतनी ऊंची कल्पनाएं न की होती तो शायद में सुखी हो पाती। अगर साम्ब और उसका परिवार, कल्पनाएं न की होती तो शायद मैं सुखी हो पाती। अगर साम्ब और उसका परिवार, हर प्रकार से साधारण और मध्यवर्ग का न होता तो शायद में इतना असन्तोष न अनुभव करती। अगर शादी से पहले मेरी जिन्दगी नये कपड़ों, पार्टियों लेट नाइट्स में न लिप्त होती तो शायद मैं ... अगर डैडी और ममी ने मेरे अन्दर यह भावना न भरी होती कि मैं सब भाई–बहनों में सुन्दर हूँ, अगर मेरी हर इच्छा की पूर्ति न हुई होती ...।[8]

बेटे के स्नेह ने उसे बांध लिया है। जो स्नेहनारी को पत्नी रूप में नहीं बांध पाया वही मातृ–रूप में उस पर हावी हो मन को कचोट रहा है। नारी स्वयं को चाहे पति के अनुरूप ढालना न चाहे, परन्तु सन्तान के कारण वह अपने को विवश अनुभव करती है।

बच्चे भी मां के अभाव में कैसा अनुभव करते हैं, उनकी क्या प्रतिक्रिया होती है, इस समस्या को भी लेखिका ने अभिव्यक्ति दी है। पत्नी अपने आत्मसंतोष के लिए पति से विलग हो जाती हैं। पर बच्चे भटकन व अकेलापन महसूस करते हैं। उनकी इच्छा एक ही घर में मां और बाप को पाने की होती है। ''दृष्टिकोण'' का बण्टी अपनी मां से कहता है –

''मैं छुट्टी में घर जाऊंगा तो तुम वहां रहोगी न ? बड़ा मजा आयेगा न ? बड़ा मजा आयेगा। हम तीनों खूब घूमेंगे।''[9]

फिर शरमा कर उसने कहा, ''पिछली बार जब मैं तुम्हारे पास से गया तो मुझे रात को तुम्हारी बहुत याद आयी, मैं रोने लगा तो पापा ने मुझे अपने पास लिटा लिया, बहुत कहानियां सुनायी। तब भी तुम्हारी बहुत याद आयी।''[10] ... वह कौतूहल वश अपनी मां से प्रश्न पूछता है ... ''ममी, तुम्हें पापा क्यों नहीं अच्छे लगते ? मुझे तो बहुत अच्छे लगते हैं।''[11]

''प्रतिध्वनियां'' कहानी में भी ऐसा ही स्वर ध्वनित होता है। इस कहानी में माता का परम्परागत स्वरूप खण्डित हुआ है। ''दृष्टिकोण'' में तो वह बच्चे के स्नेह–पाश में बंधी समझौता कर लेती है। बस अपने स्वतंत्र अस्तित्व की रक्षा करती हुई, अपनी बची रूचि के भविष्य के विषय में नहीं सोचती। वह उस आधुनिका का भांति है, जो किसी प्रकार की पारिवारिक जिम्मेदारी नहीं लेना चाहती – जो सब सम्बन्धों को तोड़कर मुक्त–भाव से स्वच्छन्द जीना चाहती है। रूचि के जन्म को ''एक बायलॉजिकल घटना'' से अधिक महत्व नहीं देती। ''कितना बड़ा झूठ'' की किरन अपने स्वतन्त्र व्यक्तित्व की रक्षा करती हुई पति व बच्चों के प्रति कर्त्तव्य का निर्वाह कर रही है। नौकरी से घर वापस लौटने पर स्नेह भाव से बच्चों का हाल चाल पूछती है। उसके, उनके साथ आत्मीय सम्बन्ध हैं ... किरन ने नीता के सिर पर हाथ रख कर पूछा, कैसा रहा कैम्प ? तैरना सीखा ? घर पर पापा को तंग नहीं किया ? लीना ने लड़ाई तो नहीं की।''[12]

किरण उस आधुनिक मां की भांति है, जो बच्चे की रूचियों, इच्छाओं का ध्यान रखती है। बाहर से लौटने पर उनके लिए उपहार लेकर आती है।

कहने का भाव यह है कि मात रूप में वह अपनी व्यवहार कुशलता और सहज बुद्धि द्वारा बच्चों की रूचि के अनुसार स्वयं को ढ़ाल लेती है। ''वापसी'' और ''जिन्दगी और गुलाब के फूल'' में ऐसी ही मां का चित्रण है – ''वापसी'' में वह पति को बच्चों के कार्य मे हस्तक्षेप करने से रोकती है – ''ठीक ही है, आप बीच में न पड़ा कीजिए, बच्चे बड़े हो गए हैं, हमारा जो कर्त्तव्य था, कर रहे हैं।''[13] पति के रिटायर हो कर फिर वापिस नौकरी पर जाने पर, साथ चलने के लिए कहने पर उसके साथ न जाकर बच्चों के पास रहती है। वह बच्चें के साथ भावनात्मक तौर पर जुड़ी हुई है। भले ही कोई यह कहे कि वहां उसके अहं भाव को परितृप्ति मिलती है।

मातृ रूप में नारी जीवन की परिस्थितियों के महत्त्व को समझकर स्वयं उसके अनुरूप ढ़लने का प्रयास करती है। ''जिन्दगी और गुलाब के फूल'' में मां दोनों बच्चों को समभाव से स्नेह करती है परन्तु पुत्री के अर्थोपार्जन करके घर चलाने के कारण उसकी आवश्यकता अनुसार परिवार की व्यवस्था में परिवर्तन आने देती है। वह बेटे की भावनाओं को भी ठेस नहीं पहुंचाना चाहती, सुबोध की बेकारी के लिए जहां वह चिन्तित हैं, वहां उसकी भावनाओं का भी ख्याल रखती है। उसे दुःख है तो ये कि सुबोध वक्त पर आ कर खाना नहीं खाता। वह उसे शिकायत भरे स्नेह–कातर स्वर से कहती है –

''तुम कभी ठीक वक्त से आते भी हो। रात को दस–ग्यारह बजे आये। ठण्डा–सूखा खा लिया। सुबह उठे, दोपहर के लिए गायब। कब नाहं, कब दूं।''[14]

''ट्रिप'' कहानी की सोनी बच्चों द्वारा अपनी उपेक्षा किए जाने पर आहत हो उठती है। पहले जब बच्चे छोटे थे, वह उन्हें लेकर खुश रहती थी। पर अब उनके बड़े हो जाने पर, बोर्डिंग हाउस में भेज दिये जाने पर सोचती है कि ''सुख की अपनी–अपनी परिभाषाएं हैं। कोई शराब में अपने को डूबो कर भूल जाना चाहता है, किसी के लिए शशि कपूर की फिल्म जरूरी है। उसके लिए परिभाषाएँ हमेशा बदलती रहती थी। बहुत पहले बच्चे थे, स्वस्थ, इन्टेलिजेन्ट, अब बड़े हो गये हैं और पिता ने उन्हें बोर्डिंग हाउस में भेज दिया है। साल में एक बार घर आते हैं। हर बार और दूर होते लगते हैं। अकसर दोनों लड़कों से क्या बातें करें, यह समझ नहीं पाती।''[15]

यहां इस कहानी मे मां के भारतीय संस्कार हावी हो उठते हैं। वह संस्कारों से इतनी आक्रान्त है कि बच्चों के आत्मनिर्भर जीवन को सहन नहीं कर पाती। विश्राम के क्षणों में भावुक हो उठती है।

नारी चाहे सभी भूमिकाओं में स्वतन्त्र होने की कामना करे पर मां रूप में वह भावनात्मक, रागात्मक, आत्मिक रूप से बंधी हुई है। सन्तान द्वारा किया गया ठण्डा व्यवहार उसकी भावनाओं को ठेस पहुंचाता है। बच्चे जब उससे किसी कार्य के लिए नहीं कहते हैं, उसकी रूटीन में बाधा नहीं डालते हैं, मां के बनाए पकवान शिष्टतावश चख भर लेते हैं तो वह मर्माहत होकर रह जाती है। वह तो परम्परागत मां की भांति चाहती है कि बच्चे उससे लाड़–दुलार करें, वह उन्हें लेकर व्यस्त हो जाए, तरह–तरह के व्यंजन बनाए। अकेले पड़ जाने की स्थिति में निराशा के क्षणों में वह सोचती है–

''क्या कल वह बच्चों को चिट्ठी लिखे ?''[16] वह मुक्त होती हुई थी बन्धन में बंधने के लिए लालायित है। मां के रूप में सब कर्त्तव्यों से छुट्टी पर लेने पर क्या वह आत्संतोष पा सकी है ? अपितु और भी अकेली वह अनुभव करती है।

''सुरंग'' कहानी में लेखिका ने इसके विपरीत स्थिति को उठाया है। ''सुरंग'' कहानी में मां अपने युवा पुत्र की मृत्यु के बाद टूट कर रह जाती है – इस आघात ने उसे इस सीमा तक तोड़ कर रख दिया है कि वह भावनात्मक और रागात्मक सम्बन्धों से मुक्ति पा गई है। वह भजन पूजा–पाठ में ही शान्ति खोजती है। अपनी दोनों लड़कियों को जिन्हें मां से भावनात्मक संरक्षण चाहिए, मां का प्यार चाहिए वह नहीं दे पाती। अरूणा के कई दिनों में घर लौटने पर उसके ह्रदय में उसके प्रति किसी प्रकार का स्नेह नहीं उमड़ता है – छोटी बेटी बेबी रात की निस्तब्धता में स्वयं को अकेली पा कर रो पड़ती है। मां के ह्रदय में बेटी के प्रति कोई सहानुभूति या संवेदना का भाव नहीं जगता है। – ''इस लड़की ने दुःखी कर दिया है। क्या करे कोई।''[17] यह कह कर अपने कमरे में जा कर सो जाती है। स्वयं अरूणा के शब्दों में – ''वे मां न होकर अजनबी हो गई हैं।''[18] क्या मां सचमुच बेटियों के सुख–दुःख से इतनी दूर हट गई है।''[19]

इस कहानी में मां का जो परिवर्तित रूप दिखाया गया है, उसके मूल में मानव मनोविज्ञान कार्यशील है। दुःखों ने उसे पुत्रियों के सुख–दुःखों की ओर से अनासक्त बना दिया है। ...अरूणा के शब्दों में ... ''भाई की मृत्यु वाली उस दुर्घटना के बाद, कई महीनों तक, शाम की यह ट्रेन सीटी देती तो मां घर के अन्दर ही सुबकने लगती। फिर उन्हें उनके भगवान मिल गए।''[20] दुःख के चरम क्षणों में भगवान की भक्ति पूजा–पाठ की ओर ध्यान ले जाने के अतिरिक्त मां के पास दूसरा मार्ग ही क्या था ?

उषा प्रियम्वदा ने अतृप्त मातृ–वेदना से युक्त, वात्सल्य भाव सम्पन्ना मां का रूप चित्रित किया है। जहां आधुनिक मां का खंडित रूप उन्होंने लिया है, वहां पर ऐसे नारी पात्र भी के रूप में दिखाये हैं, जो पुरातन पंथी और रूढ़िग्रस्त हैं। ''अकेली राह'' में गौरी की मां, बेटी का सन्ध्या के बाद बाहर रहना पसन्द नहीं करती है। वह उससे स्पष्ट शब्दों में कहती है – ''सुनो, गौरी, बहुत सहा है हमने। अब चुप नहीं रहा जाता। भले लोगों की तरह चार बजे घर लौट आया करो। दीया जले तक इधर–उधर डोलना हमें पसन्द नहीं है।''[21] साबिरा के भाई के साथ उसे बाते करते हुए देख लेने पर मां क्रोधित हो उठती है, ... ''अरी चांडालिन, साबिरा के भाई से बातें हो रही थी। बीच सड़क पर, हाथ में हाथ देकर। हाय मैं क्या करूं ? मर जाऊं ? मरूंगी, इसी लिए बीच आंगन में कुआं खुदवाया था। मैं यह अधर्म नहीं देखूंगी।''[22] गौरी के रहमान के साथ शादी करने के विचार से वह किस प्रकार विद्रोह कर उठती है – ''अगर तुमने ऐसा वैसा किया, तो मैं जहर खा लूंगी, इधर तुम्हारा डोला उठेगा, उधर मेरी लाश।''[23]

मां के रूप में जहां वह परम्परागत संस्कारों के कारण इतनी विद्रोहिणी है, वहां मां की ममता एवं संवेदनशील हृदय भी उसके पास है। गौरी का अनमनापन देख कर व्याकुल हो उठती है – ''थाली में अगर कुछ खाना छूट जाता तो उन्हें मन में बड़ा दुःख होता, अगर गौरी एक ही धोती दो दिन लगातार पहन कर चली जाती, तो उन्हें बड़ा दुःख होता। वह चाहती कि गौरी भी हंसे, पहले की तरह हर समय गुनगुनाती रहे, नए कपड़े खरीदे और पहने।''[24] यही नहीं रात को चुपके झांक कर देखती, कहीं वह रो तो नहीं रही है। अपनी बेटी की सुन्दरता को देखकर वह स्वयं से पूछती है... चिकने–चिकने हाथ, उजली, सुडौल बाहें – उनके मन में एक बूबला सा उठा।'' अगर वक्त पर शादी हो जाती, तो ? उनकी ऐसी सुन्दर लड़की कुंआरी ही रह जाएगी ? उसके सिर पर किसी की छांह नहीं रहेगी, उसकी गोदी में कभी बच्चे नहीं खेलेंगी ?''[25]

मां सदैव ही बेटी के सुखद भविष्य के सपने देखती है। वह चाहती है कि उसकी बेटी सुखी प्रसन्न चित्त रहे।

उषा प्रियम्वदा ने मां का जो रूप लिया है आधुनिकता की गवाही न देकर पुरातन पन्थी ही है। भले ही एक दो कहानियों में मां के रूप में आधुनिका की भांति चित्रित की गई हैं पर नारी के रूप में संस्कारवश सहज, वात्सल्यमयी, ममतामयी है। वह मातृत्व की इच्छा से मुक्त नहीं हो पाई है। वह आधुनिकता हो, इसका स्वांग चाहे रचती हो। ''प्रतिध्वनियां'' की वसु रूचि द्वारा यह कहने पर ...[26] मुझे औरों का नार्मल घर देखकर कभी–कभी महसूस होता है कि आप घर होती, तो अच्छा रहता ''वह उसके कैसे समझाये कि– ''किसी अनजान क्षण में रूचि गर्भस्थ हुई और पैदा होते ही सास द्वारा छीन ली गयी। बहुत कम उम्र की और अल्हड़ है''[27] अतृप्त मातृत्व की इच्छा उसमें विद्यमान है। परम्परागत नारी के मां रूप में उसकी ममता की भावना को अभिव्यक्ति प्रदान की है। मां के रूप में वह इनकी कहानियों में विकृत नहीं हुई है। मां का रूप ही ऐसा है कि वह किसी कारणवश विद्रोहिणी चाहे हो जाए पर वात्सल्य–भाव उसे सन्तान का साथ छोड़ने नहीं देता। नारी मातृत्व में अपने जीवन की स्वाभाविक परिणति मानती है।

उषा प्रियम्वदा और पत्नी

प्राचीन काल से साहित्य में नारी के पत्नी रूप की भूमिका सबसे अधिक रही है, पत्नी रथ की धुरी के समान गृहस्थ की मूलाधार है। वेदों का यह कथन कितना सार्थक है– ''जिस घर में पत्नी नहीं, उस घर में दिन का निवास नहीं।''[28] अतः मानव–सभ्यता के आदि काल से ही घर में पत्नी की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। तन–मन–वचन से पति–परायण पत्नी का आदर्श रूप माना गया है। पति–प्रेम की अनन्यता के कारण वह पति का बड़े–से–बड़ा अत्याचार चुपचाप सहन करती रही। आधुनिक युग की बदलती हुई परिस्थितियों के साथ नारी की, पत्नी की भूमिका में परिवर्तन आया है। आज भी चाहे समाज मे पत्नी के परम्परागत रूप के छिटपुट उदाहरण मिल जाते हैं, परन्तु प्रमुखतः पत्नी का समाज में बदलता हुआ रूप ही दिखाई देता है।

आज वह पुरूष पति की अनुगामिनी नहीं सहगामिनी है, अग्रगामिनी है। अब पति उसके लिए सर्वस्व नहीं रह गया है। आज वह अपनी भावनाओं, आकांक्षाओं, लालसाओं के विषय में स्वतंत्र रूप से ही सोचती है। आज यदि उसे पति की कोई बात पसन्द नहीं है तो वह उसका खूलकर विरोध करती है, और उसके अनुसार चलने को बाध्य नहीं है। आज अगर पति उसका शोषण करना चाहता है, तो वह उसे छोड़कर अपना नया रास्ता खोजने के लिए भी स्वतंत्र है।

शिक्षिता होने के कारण आज की पत्नी में जागरूकता है, वास्तव में आधुनिक साहित्य में नारी देवी या राक्षसी–रूप से हटकर शुद्ध–मानवी–रूप में चित्रित हुई है। वह जागरूक है, बुद्धि विवेक सम्पन्न है। आत्माभिमानिनि है। उषा प्रियम्वदा की कहानियों में पत्नी का यह नया रूप मुख्यतः दिखाई देता है, साथ ही कई स्थानों पर परम्परागत स्वरूप भी दिखाई पड़ता है जहां पर वह अशिक्षिता है।

प्राचीन नारी परिवार में रहते हुए पत्नी पुत्री और पुत्रवधु सभी रूपों में दूसरे के लिए जी कर ही सन्तोष का अनुभव करती थी। परन्तु आज उसकी दृष्टि आत्म केन्द्रित होती जा रही है। वह अपने अस्तित्व को बनाए रखने के लिए पति की भावनाओं को ठेस पहुंचाने में भी किसी हीनभावना का अनुभव नहीं करती है। उसके लिए अब पति धनोपार्जन का निमित तक हो गया है। ''वापसी'' कहानी में नारी के पत्नी–रूप में इसी भाव की अभिव्यक्ति है कि वह बूढ़े पति को घर के मामलों में हस्तक्षेप करने से रोकती है। पति जिसको कि घर में प्रत्येक कार्य में सर्वप्रथम स्थान दिया जाता था पूछा जाता था उसकी स्थिति नारी के अंहभाव की तृप्ति के कारण दयनीय हो उठी है। ''ठीक ही है, आप बीच में न पड़ा कीजिए, बच्चे बड़े हो गए हैं, हमारा जो कर्त्तव्य था, कर रहे हैं। पढ़ा रहे हैं शादी कर देंगे।[29]

नारी के अहं की वृत्ति ही उसके मूल ''एड जस्टमैन्ट में बाधा पैदा करती है। जब उसके अहं भाव को चोट पहुंचती है तो वह विद्रोह कर उठती है। ''मान और हठ'' कहानी में मुकुल और अमृता में प्रेम भाव नहीं रह पाता। मुकुल भावनाओं के समक्ष पैसे को ही सब कुछ समझता है। वह सोचता है, स्त्रियों को केवल रूपया, अच्छा कपड़े, गहने, नौकर चाकर और मोटर चाहिए, वह यह सब कुछ उसे दे सकता है। उसके अन्तर के दर्द को जानने का प्रयास नहीं करता बल्कि विष बुझे बाणों से आहत करता है – ''क्या किसी पुराने प्रेमी से बिछुड़ जाने का गम है ? ''...'' ओह तो क्यों नहीं अपने माता–पिता से कह दिया कि तुम्हें कामदेव चाहिए।''[30]

पति–पत्नी में सामंजस्य नहीं रह पाता, यद्यपि वे दोनों सामाजिक बन्धनों के कारण एक दूसरे से अलग हो पाते। इस प्रकार समाज नारी की स्वतंत्रता के बीच में बाधा उपस्थित करता है। जब नारी की स्वतंत्रता की बात उठती है तो समाज दोहरे मानदण्डों की बात उठाता है, पुरूष और शादी कर अपनी दुनिया बसा सकता है'' पर नारी ? वह इस समाज के कटघरे में फंस कर तड़प–तड़प कर प्राण दे दे। उसे स्वतंत्र निर्णय लेने का अधिकार नहीं, पुरूष जैसा चाहे कर ले।

जब अमृता का पति उससे कहता है – ''मैं तुम्हारे जैसी हजारों को खरीद सकता हूँ''[31] तो वह भी अपने स्वाभिमान को ठेस पहुंचते ही कह उठती है ''आपको अपनी दौलत का घमंड है तो मैं भी आपको दिखा दूंगी।''

नारी अपने अरमान अपनी इच्छाओं की पूर्ति चाहती है ''क्या मेरे अरमान मेरी चाहें–कुछ भी नहीं।''[32]

उषा प्रियम्वदा की कहानियो में विनीत नारी का रूप भी आता है। अमृता की सखि सुषमा उसे समझाते हुए कहती है, ''औरत की इच्छाएँ, अरमान कुछ नहीं रखते। यह दुनिया पुरूषों की है।''

''फिर वसन्त आया'' कहानी संग्रह की ''दोस्त'' कहानी में सुरेखा की स्थिति ''मान और हठ'' की अमृता जैसी ही है। उसका पति उसकी भावनाओं की उपेक्षा कर दोस्तों के संग ऐश करता है, बीवी बच्चों को देखने के लिए उसके पास समय नहीं है। सुरेखा कई बार झुंझला उठती है। वह उन्मुक्त रूप से विद्रोह नहीं कर पाती, परन्तु उसका अन्तर्मन व्यथित रहता है। ''एक दिन तो छुट्टी होती है, उस दिन भी यह नहीं कि दो क्षण बैठ कर बात कर ले।''[33] वह विक्षुब्ध हुई पूर्व और विवाहोपरान्त के जीवन पर सोचती है – ''विवाह नारी के लिए जीवन भर की बेड़ी है। चुपचाप रो लो, अपने पति और बच्चों पर निछावर कर दो और पति देवता अपने दोस्तों के संग ऐश करें।''[34]

पति द्वारा यह कहने पर कि – ''मैं घर में बंध कर नहीं रह सकता'' तो उसका हृदय चीत्कार कर उठता है और वह कह उठती है ''हां, मैं हूँ ही कौन तुम्हारी। छः साल में जो कुछ था, सब खतम हो गया। अब तो बच्चे पालो, दोनों वक्त चूल्हे में सिर दो, छप्पन व्यंजन बना कर इंतजार करो।''[35]

आज नारी अपने स्वतंत्र अस्तित्व की रक्षा के लिए जागरूक हो उठी है। यह स्वतंत्र व्यक्तित्व की चेतना अभिजात वर्ग में ही नहीं आई है अपितु मध्य वर्ग भी सचेतन हुआ है। मध्यवर्ग की नारी को पुरूष पर आश्रित होने के कारण विवशता वश अत्याचार सहने पड़ते हैं। उसे दाम्पत्य जीवन में पुरूष के प्रति एकनिष्ठ न होने पर दुःख भोगना पड़ता है। इस वर्ग की नारियां किसी न किसी प्रकार समझौतावादी नीति की अपनाने का प्रयास करती हैं। वे अपनी इच्छाओं, रूचियों और धारणाओं मे अपने पति के अनुसार परिवर्तन लाने को तैयार हैं। परन्तु पति द्वारा उपेक्षा किए जाने पर ''उसका मन दो बोल प्यार के'' लिए तड़पता रहता है। विद्रोह की बात तब उठती है। जब उसका विश्वास छला जाता है। पति की अनुकम्पा पर जीने के कारण वह खुल कर विद्रोह तो नहीं कर पाती परन्तु उसका अन्तःस्थल क्षत विक्षत होकर रह जाता है। अपने पति के अन्य स्त्रियों के साथ सम्बन्ध जान कर वह बरबस चीख उठती है –

''तुमने मेरा विश्वास तोड़ दिया दिनेश, तुमने मुझे छला। क्या मैंने तुम्हें प्यार नहीं किया, क्या मैंने तुम्हें अपना शरीर नहीं दिया ? मैं कष्टों में भी मुसकराती रही, थोड़े में ही सन्तुष्ट रही, उसका बदला, तुमने मुझे इस तरह दिया।''[36]

उसकी घृणा इतनी बढ़ जाती है कि किसी भी स्वावलम्बी नारी का विवाह होना उसे अर्थहीन लगता है। उसकी यह धारणा बन जाती है ''अगर उसने विवाह न कर नौकरी कर ली होती तो वह भी शायद सुखी होती।''

मध्य वर्ग तथा निम्न मध्यवर्ग की नारी पति के शोषण का शिकार होते हुए भीतर ही भीतर कुलबुला कर रह जाती है कोई विद्रोह नही करती, मौन दुःख के आंसू रो लेती हैं। अपने वर्तमान स्थिति से ही समझौता करती हैं।

नारी के इसी मूक विद्रोह ने आज उसे इस के प्रति सजग विद्रोह करने के लिए विवश कर दिया है। आज मध्यवर्गीय परिवार की नारी बौद्धिक रूप से सजग व सचेतन हो उठी है। वह परिवार के बन्धन मानने लगी है। एक दायरे में बंध कर रहना उसे अस्तित्व अब उसके लिए गौण हो गया है। आज वह एक व्यक्ति के खूंटे से बंधे रह कर अपने जीवन के उल्लास को समाप्त नहीं कर सकती ''तुम समझने की कोशिश क्यों नहीं करते, राजन। मैं एक दायरे में बंधकर नहीं रह सकती।''[37] आज वह घर में रह कर जीवन व्यतीत करने को बंधन मानने लगी है। वह स्पष्ट शब्दों में अपनी सखी से कहती है – ''यह चाहते हैं कि मैं घर में रहूँ। कुत्ते पालूं, बाग देखूं और पर–चर्चा करूं जैसे कि सब करते हैं। मुझसे नहीं होता। बेहद उब जाती हूँ।[38]

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. प्रियम्वदा उषा (1961) पूर्ति, जिन्दगी और गुलाब के फूल, भारतीय पीठ काशी, पृ. 79
2. प्रियम्वदा उषा (1966) टूटे हुए, एक कोई दूसरा, अक्षर प्रकाशन, दिल्ली पृ. 171
3. प्रियम्वदा उषा (1961) जिन्दगी और गुलाब के फूल पृ. 7
4. (पेरम्बुलेटर) वही, पृ. 8
5. प्रियम्वदा उषा (1961) मान और हठ, फिर वसन्त आया दिल्ली प्रेस, नई दिल्ली पृ. 45
6. प्रियम्वदा उषा (1972) स्वीकृति, कितना बड़ा झूठ, राजकमल प्रकाशन दिल्ली पृ. 39
7. प्रियम्वदा उषा (1961) दृष्टिदोष, जिदंगी और गुलाब के फूल, भारतीय ज्ञान पीठ काशी पृ. 128
8. प्रियम्वदा उषा (1961) दृष्टिदोष, जिदंगी और गुलाब के फूल, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी पृ. 128
9. वही पृ. 128
10. वही पृ. 128
11. वही पृ. 129

12. प्रियम्वदा उषा (1972) कितना बड़ा झूठ, कितना बड़ा झूठ, राजकमल प्रकाशन दिल्ली पृ. 46
13. प्रियम्वदा उषा (1961) वापसी, जिंदगी और गुलाब के फूल, भारतीय ज्ञान पीठ काशी पृ.–140
14. प्रियम्वदा उषा (1961) वापसी, जिंदगी और गुलाब के फूल, भारतीय ज्ञान पीठ काशी पृ.–145
15. प्रियम्वदा उषा (1972) ट्रिप, कितना बड़ा झूठ, राजकमल प्रकाशन दिल्ली पृ. 58
16. प्रियम्वदा उषा (1972) ट्रिप, कितना बड़ा झूठ, राजकमल प्रकाशन दिल्ली पृ. 62
17. प्रियम्वदा उषा (1972) सुरंग, कितना बड़ा झूठ, राजकमल प्रकाशन दिल्ली पृ. 77
18. प्रियम्वदा उषा (1972) सुरंग, कितना बड़ा झूठ, राजकमल प्रकाशन दिल्ली पृ. 76
19. प्रियम्वदा उषा (1972) सुरंग, कितना बड़ा झूठ, राजकमल प्रकाशन दिल्ली पृ. 72
20. प्रियम्वदा उषा (1972) सुरंग, कितना बड़ा झूठ, राजकमल प्रकाशन दिल्ली पृ. 74
21. प्रियम्वदा उषा (1961) अकेली राह, फिर वसन्त आया, दिल्ली प्रेस, नई दिल्ली पृ.–104
22. प्रियम्वदा उषा (1961) अकेली राह, फिर वसन्त आया, दिल्ली प्रेस, नई दिल्ली पृ.–109
23. प्रियम्वदा उषा (1961) अकेली राह, फिर वसन्त आया, दिल्ली प्रेस, नई दिल्ली पृ.–64
24. प्रियम्वदा उषा (1961) अकेली राह, फिर वसन्त आया, दिल्ली प्रेस, नई दिल्ली पृ.–113
25. प्रियम्वदा उषा (1961) अकेली राह, फिर वसन्त आया, दिल्ली प्रेस, नई दिल्ली पृ.–115
26. प्रियम्वदा उषा (1972) प्रतिध्वनियां, कितना बड़ा झूठ, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली पृ. 35
27. प्रियम्वदा उषा (1972) प्रतिध्वनियां, कितना बड़ा झूठ, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली पृ. 34
28. वही, पृ. 34
29. प्रियम्वदा उषा (1961) वापसी, जिन्दगी और गुलाब के फूल, भारतीय ज्ञानपीठ काशी पृ.–140
30. प्रियम्वदा उषा (1961) मान और हठ, फिर वंसत आया, दिल्ली प्रेस, नई दिल्ली पृ. 40
31. प्रियम्वदा उषा (1961) मान और हठ, फिर वंसत आया, दिल्ली प्रेस, नई दिल्ली पृ. 40
32. प्रियम्वदा उषा (1961) मान और हठ, फिर वंसत आया, दिल्ली प्रेस, नई दिल्ली पृ. 41
33. प्रियम्वदा उषा (1961) मान और हठ, फिर वंसत आया, दिल्ली प्रेस, नई दिल्ली पृ. 20
34. प्रियम्वदा उषा (1961) दोस्त, फिर बसंत आया, दिल्ली प्रेस नई दिल्ली पृ. 22
35. प्रियम्वदा उषा (1961) दोस्त, फिर बसंत आया, दिल्ली प्रेस नई दिल्ली पृ. 23
36. प्रियम्वदा उषा (1961) दो अंधेरे, जिन्दगी और गुलाब के फूल, भारतीय ज्ञानपीठ काशी, पृ.–11
37. प्रियम्वदा उषा (1961) मोह बन्ध, जिन्दगी और गुलाब के फूल, भारतीय ज्ञान पीठ काशी पृ. 22
38. प्रियम्वदा उषा (1961) मोह बन्ध, जिन्दगी और गुलाब के फूल, भारतीय ज्ञान पीठ काशाी पृ. 22